पंचमंगल पाठ

ये पांचों मंगल अभिषेक के समय न बोलकर सामग्री बनाते समय बोल लेना चाहिये

पणविवि पंच परमगुरु गुरु जिनशासनो।
सकलसिद्धि दातार सु विघन विनासनो॥
शारद अरु गुरु गौतम सुमति प्रकासनो।
मंगल कर चउ संघहि पापपणासनो॥

पापहिं पणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ।
धरि ध्यान करम विनाशि केवल ज्ञान अविचल जिन लहिउ॥
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुरनर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥१॥

1. गर्भकल्याणक

जाके गर्भ कल्याणक, धनपित आइयो।
अवधिज्ञान - परवान, सु इंद्र पठाइयो॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनकरयणमणिमंडित, मन्दिर अति बनी॥

अति बनी पोरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहये।
नरनारि सुन्दर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहिये॥
तहँ जनकग्रह छहमास प्रथमहिं, रतन धारा बरसियो।
पुनि रूचिकवासिनि जननि-सेवा करहिं सब विधि हरसियो॥२॥

सुरकुँजर सम कुंजर, धवन धुरंधरो।
केहरि-केशरशोभित, नख शिख सुंदरो॥
कमलाकलस-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी।
रविससि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी॥

पावनिकनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो।
कल्लोल-माला-कुलित-सागर, सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई।
रुचि रतनरासि दिपन्त, दहन सु तेजपुंज विराजई॥३॥

ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं।
देखे माय मनोहर, पच्छिम रयनही॥
उठी प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो॥
भासियो फल तिहिं चिंत दम्पति परम आनन्दित भये।
छहमास परि नवमास पुनि तहँ, रयन दिन सुखसों गये॥
गर्भावतार महा महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
मणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥४॥

2. जन्म कल्याणक

मति-श्रुत-अवधि-विराजित, जिन जबजनमियो।
तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो॥
कल्पवासि घर घंट, अनाहद बज्जियो।
जोतिष-धर हरिनाद, सहज गल गज्जियो॥
गज्जियो सहजहिं संख भावन, भुवन सवद सुहावने।
वितर-निलय पटु पटहिं बज्जहि, कहत महिमा क्यों बनें॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचैं जानियो।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो॥५॥

जोजन लाख गयंद, वदन सौ निरमये।
वदन वदन वसुदंत, दंत सर संठये॥
सर-सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पच्चीस विराजहीं॥

राजहीं कमलिनी कमलउठोतर सौ मनोहर दल बने।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव भाव सुहावने॥
मणि कनक-किंकणि वर विचित्र, सु अमर-मण्डप सोहये।
धन घंट चँवर भुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये॥६॥

तिहिं करि हरि चढ़ि आयउ, सुर-परिवारियो।
पुरहिं प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामयि सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची॥

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित ह हृदय हरणा सहस लोचन पूजिये।।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इन्द्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
इंसान इन्द्र सुचन्द्र छवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ॥७॥

सनतकुमार महेन्द्र चमर दुई ढ़ारहीं।
शेष शक्र जयकार, शबद उच्चारहीं॥
उच्छव-सहित चतुरविधि, सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवै, गगन उलँघि गये॥

लँघि गये सुरगिरि जहाँ पांडुक वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक शिला तहँ अर्द्ध चंद्र समान, मणि छवि छाजहीं॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊँची गनी।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलशनि सिहंपीठ सहावनी॥८॥

रचि मणिमंडप शोभित, मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुदुंभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने॥

बाजने बाजहिं सची सब मिल, भवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना, सब देव कौतुक धावहीं॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुरगिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इन्द्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं॥९॥

वदन उदर अवगाह, कलशगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढ़रे।
पुनि सिंगार प्रमुख, आचार सबै करे॥

करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहि दयो।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहि गयो॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहिं।
मणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥१०॥

3. तपकल्याणक

श्रम-जल-रहित सरीर, सदा सब मल-रहिउ।
छीर वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ॥
प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं।
सहज सुगंध सुलच्छन, मंडित छाजहीं॥

छजहिं अतुल बल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन-रुचिर उचित जु नित नये।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम सकल भोग विभोगये॥११॥

भव-तन-भोग-विरत्त, कदाचित चिंतए।
धन यौवन पिय पुत्त, कलित्त अनित्तए॥
कोउ न सरन मरन दिन, दुख चहुँगति भर्‌यो।
सुखदुख एकहि भोगत, जिय विधि-वसि परयो॥

परज्यो विधि-वस आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो।
तन असुचि परतैं होय आस्त्रव, परिहरे तैं संवरो॥
निरजरा तपबल होय समकित, बिन सदा त्रिभुवन भ्रम्यो।
दुर्लभ विवेक बिना न कबहू, परम धरम विषैं रम्यो॥१२॥

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया।
लोकांतिक वर देव, नियोगी आइया॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया।
स्वयं बुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया॥

समुझाय प्रभु को गये निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो।
रुचि रुचिर चित्र विचित्र सिविका कर सुनन्दन वन लियो॥
तहँ पंचमुट्ठी लोंच कीनों, प्रथम सिद्धनि नुति करी।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर सकल परिग्रह परिहरी॥१३॥

मणि-मय-भाजन केस परिट्ठिय सुरपति।
छीर-समुद्र-जल खिप करि, गयो अमरावती॥
तप-संयम-बल प्रभुको, मनपरजय भयो।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो॥

गयो कछु तहँ काल तपबल, रिद्धि वसुविधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यान-बलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया॥
खिपि सातवें गुण जतन बिन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बदिउ।
करि करण तीन प्रथम सकुल-बल, खिपकसेनी प्रभु चढ़िउ॥१४॥

प्रकृति छत्तीस नवें, गुणथान विनासिया।
दसवें सूच्छम लोभ, प्रकृति तहँ नासिया॥
सुकल ध्यानपद दूजो, पुनि प्रभु पूरियौ।
बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ॥

चूरियौ त्रैसठ प्रकृति इहविधि, धातिया-करमनि तणी।
तप कियो ध्यान-पर्यन्त बारह-विधि त्रिलोक-सिरोमणी।
निःक्रमण-कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
मणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥१५॥

4. ज्ञानकल्याणक

तेरहवें गुणथान सयोगि जिनेसुरो।
अनन्त-चतुष्टय-मंडिय, भयो परमेसुरो॥
समवसरन तब धनपति, बहु-विधि निरमयो।
आगम-जुगति प्रमान, गगन-तल परि ठयो॥

परि ठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभा-मण्डप सोहये।
तिहिमध्य बारह बने कोठे, कनक सुरनर मोहये।
मुनि कलप-वासिनि अरजिका, पुन ज्योति-भौमि-व्यन्तर तिया।
पुनि भवन-व्यन्तर नभग सुर नर पसुनि कोठे बैठिया॥१६॥

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहाँ बने।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने।
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए॥

सोहये चौसठ चमर ढुरत, अशोक-तरु तल छाजए।
पुनि दिव्यधुनि प्रति-सबद-जुत तहँ, देव दुंदभि बाजए।
सुर-पुहुपवृष्टि सुप्रभा-मण्डल, कोटि रवि छवि छाजए।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए॥१७॥

दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूँ दिसी।
गगन-गमन अरु प्राणी-वध नहिं अह-निसी॥
निरुपसर्ग निराहार, सदा जगदीश ए।
आनन चार चहुँदिसि सोभित दीसए॥

दीसय असेस विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना।
छाया-विवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना॥
नहिं नयन-पलक-पतन कदाचित, केश नख सम छाजहीं।
ये धातिया छय-जनित अतिशय, दस विचित्र विराजही॥१८॥

सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिए।
सकल जीवगत मैत्री-भाव बखानिए॥

सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै।
दरपन-सम मनि अवनि, पवन-गति अनुसरै॥
अनुसरै, परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता।
जोजन प्रमान धरा सुमार्जहिं, जहाँ मारुत देवता॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी।
पद-कमल-तर सुर खिपहिं कमल सु धरणि ससि-सोभा बनी॥१९॥
अमल-गगन-तल अरु दिसि, तहँ अनुहारहीं।
चतुर-निकाय देवगण, जय जयकारहीं॥
धर्मचक्र चलै आगे, रवि जहँ लाजहीं।
पुनि भृंगार-प्रमुख, वसु मंगल राजहीं॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने।
जिनराज केवलज्ञान महिमा, अवर कहत कहाँ बने।
तब इन्द्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी।
धर्मोपदेश दियो तहाँ, उच्चरिय वानी जिनतनी॥२०॥
छुधा तृषा अरु रोग, रोष असुहावने।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि रहितदेव निरंजनो।
नव परम केवलब्धि मंडिय सिव-रमनि-मनरंजनो॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
मणि 'रूपचंद' सुदैव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥२१॥

5. निर्वाणकल्याणक

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो।
भव्यनि प्रति उपदेश्यो, जिनवर तारिसो॥
भव-भव-भीत भविकजन, सरणै आइया।
रत्नत्रय-लच्छन सिवपंथ लगाइया॥

लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय सुकल जु पुरिया।
तजि तेरवां गुणथान जोग, अजोगपथ पग धारियो॥
पुनि चौदहें चौथे सुकल बल, बहत्तर तेरह हती।
इति धाति वसुविध कर्म पहुंच्यो, समय में पंचम गती ॥२२॥

लोकसिखर तनुवात, वलयमहँ संठियो।
धर्मद्रव्य बिन गमन न, जिहि आगैं कियो॥
मयन-रहित मूषोदर, अंवर जारिसो।
किमपि हीन निज तनुतै, भयो प्रभु तारिसो॥

तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसु-गुणमयी॥
वस्तुस्वभाव विभावविरहित, सुद्ध परिणति परिणयो।
चिदरूप परमान्द मन्दिर, सिद्ध परमातम भयो ॥२३॥

तनु-परमाणू दामिनि-वत, सब खिरगए।
रहे शेष नखकेश-रूप, जे परिणए॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभ सच्यो।
मायामयि नखकेश-रहित, जिनतनु रच्यो॥

रचि अगरचंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध संस्कारियो॥
निर्वाण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
मणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥२४॥

मै मतिहीन भगतिवस, भावन भाइया।
मंगल गीतप्रबंध, सु जिनगुण गाइया॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं॥

पावहीं आठों सिद्धि नवनिध, मन प्रतीत जो लावहीं।
भ्रम भाव छूटैं सकल मनके निज स्वरूप लखावहीं॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन सु होहिं मंगल नित नये।
मणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति, जिनदेव चउ-संघहिं जये ॥२५॥